chapter. 2

द्वितीय अध्याय

भगवंतराय का वंश परिचय और जीवनी

(पृष्ठ ५४-८८)

भगवंतराय का वंश-परिचय

खीची चौहानों की एक शाखा हैं : भगवंतराय चौहानों के प्रमुख चौबीस कुलों में से खीची कुल में जन्मे थे । इन्हीं के आश्रित महाकवि देव ने उनके पूर्वजों को आबू के अग्निकुंड से उत्पन्न चौहानों का वंशधर बताया है ।[1] किन्तु इतिहास की नवीन शोधों ने इस कथन को मध्यकाल का सर्वस्वीकृत भ्रम सिद्ध कर दिया है । अब चौहानों के सूर्यवंशी[2] होने के अनेक प्रमाण प्रकाश में लाए जा चुके हैं । जो पुरानी मान्यताओं का खंडन करते हैं । डा० राजबली पांडेय के शब्दों में अग्निकुंड की नवीन व्याख्या को प्रस्तुत करना यहां संगत होगा - " अग्निकुंड की व्याख्या कतिपय इतिहास-लेखक बाहर से आई जातियों की शुद्धि के रूप में करते हैं, परन्तु वास्तव में अरब तुर्क आक्रमण के पूर्व अपने वंश और वर्ग की रक्षा के लिए क्षत्रिय राज वंशों के दृढ़ संकल्पों की यह कहानी है ।"[3] अब चौहानों को सूर्य वंशी माना जाता है जिनकी प्रथम राजधानी अहिच्छत्रपुर में थी । यह स्थान उत्तर प्रदेश के आधुनिक बरेली जिले में था । किसी समय यहां से दक्षिण पश्चिम की ओर संचरण करके इन लोगों ने राजस्थान के सांभर झील के आसपास अपनी सत्ता स्थापित की । इसी वंश के एक राजा अजयपाल ने एक अनुश्रुति के अनुसार अजमेर नामक नगर बसाकर उसे अपनी राजधानी बनायी । अजमेर से लगभग १०४८ वि०[4] के आसपास जब वहां राय सिंह नामक राजा था / लक्ष्मण सिंह के नेतृत्व में एक शाखा ने नाडौल में अपनी स्थापना

१- जग्य रच्यो सर्वज्ञ विधि, विधि हरि हर गुन गान
प्रगट्यो पावक कुंडतें नृप प्रचंड चहुआन " - जैसिंह विनोद

२- काकुत्स्थमिक्ष्वाकुरघू च यद्दधत्पुराभवत्त्रिप्रवरं रघोः कुलम् ।
कलावपि प्राप्यसचाहमानतां प्रख्ढतुर्यं प्रवरं वभूवतत् ।। पृ० विजय २।७१

३- वहृत इति० भाग-१, पृ० ५८

४- चौ०कु०क० पृ० ५२

की ।[1] यह लक्ष्मण सिंह स्वाभिमानी एवं स्वातंत्र्य प्रिय था । उसके दर्पशील व्यक्तित्व की छाप चारण-कंठ में चिरकाल तक गूंजती रही ।

राय सिंघ तिण पाट रहै सेवै तुरकाणौ
लाखणसी घर छांड़ हुऔ नाडोलौ राणौ

(चौ०कु० कल्पद्रुम पृ० ५३ में उद्धृत)

इस चारणोक्ति के अनुसार कहा जा सकता है कि नाडोल शाखा के चौहान अपने भीतर क्षात्रियोचित स्वाभिमान एवं स्वातंत्र्य-प्रियता तथा आत्मसंमान को अजमेर शाखा वालों की अपेक्षा अधिक अनुभव करने लगे थे ।

भगवंतराय के पूर्वज गागरौण के राजवंश के थे - नाडोल राज्य के संस्थापक लक्ष्मण सिंह (लाखनसी) की छठी पीढ़ी वि०सं० ११७२ के[2] आसपास अश्वराज हुए । अश्वराज के पुत्र माणिक्य राय थे जिन्होंने अपने पुत्र अजयराव को जायल और भदाण नामक ठिकानों में किले बनवा कर वहां का शासक बनाया । इन्हीं अजयराव[3] को उनके पिता माणिक्य राव ने खीची[4] कहकर संबोधित किया । तदनुसार इनकी संताने भी खीची कही जाने लगी । यही अजय राव खीचियों के मूल पुरुष हैं । इनके वंशजों ने लगभग १२५० ई०[5] के आसपास डोढ़

१- तुलना कीजिये चौ०कु० क० पृ० ५२

२- " अजयराव का पिता माणिक्यराव वि०सं० ११७२ में विद्यमान था क्योंकि माणिक्यराज के पिता अश्वराज के समय वि०सं० ११७२ का शिलालेख वाली गांव में पाया गया है " - चा०कु०क० पृ० ५२

३- हिं० रा० पृ० ८६६

४- खीची नाम पड़ने के सम्बंध में अनेक किंवदंतियां प्रचलित हैं । खिलचीपुर की ख्यात के अनुसार सोने चांदी की खिचड़ी बांटने के कारण खीची नाम प्रसिद्ध हुआ । नैणसी० भाग-१ पृ० १८४ के अनुसार अजयराव को उसके पिता ने गवारे(बैललाद ने वाली एक जाति) के हाथ की खिचड़ी खोलने के कारण यह नाम दे दिया । कुछ लोगों का अनुमान है कि संभवत: खीचपुर नामक गांव में बसने के कारण या खीचराव नामक किसी पूर्वज के आधार पर इन्हें खीची कहा गया होगा ।

५- हि०रा० में खीचियों के गागरोण पर अधिकार करने की तिथि सं० १२५१ वि० दी गई है जबकि खिलचीपुर की ख्यात के अनुसार उक्त तिथि ई०सन् १२५० या वि०सं० १३०७ है ।

चौ०कु० क० पृ० ६२

राजपूतों से डोड़गढ़ छीन लिया और उसका नाम बदलकर गागरोण रखा ।[1] डोड़ों के सारे प्रदेश को भी अपने ही अधिकार में कर लिया । इस नवीन राज्य के संस्थापक का नाम देवन सिंह था । देवनसिंह के वंशजों का वंश-वृक्ष ' चौहान कुल कल्पद्रुम ' के अनुसार उद्धृत किया जाता है ।[2]

- देवन सिंह (ई० १२५०)
  - जैराव उर्फ जितराय
    - कल्याण राव
      - कड़वा राव उर्फ करंधसिंह
        - पीपाराव उर्फ बप्पा
          - (गोद) कल्याणराव
            - भोजराव
              - अचलदास (१४२३ ई०)
                - चाचिग देव
                - कहान सिंह
                - पाल्हन देव
                - खड्ग सेन उर्फ गजसिंह
                  - जयसिंह
                    - पाल्हन देव
                      - साहेव देव
                        - कूरम देव
                          - डोमन देव
                            - जाजा देव
                              - प्रताप सिंह
                                - परशुराम सिंह
                                  - हरिकेश सिंह
                                    - भगवंतराय
        - प्रतापराव
        - अजय सिंह
        - मलय सिंह(राघोगढ़)

१- चौ०कु०क० पृ० ६२

२- चौ०कु०क० में यह वंशवृक्ष खीचीपुर की ख्यात हि०रा० की परीक्षा कर के प्रस्तुत किया गया है ।

विक्रम की ११वीं शताब्दी में अस्तित्व में आया चौहानों का यह वंश दक्षिण में नर्मदा-तट से लेकर उत्तर पश्चिम में पंजाब, राजस्थान और पूर्व में गंगातट तक फैल गया।[१] इतना ही नहीं खीचियों ने संस्कृति के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण कार्य किये हैं।

मध्यकाल के सुप्रमुख धार्मिक एवं सांस्कृतिक नेता रामानंद को दीक्षा गुरु बनाकर पीपा जी अपना राजपाट त्यागकर विरक्त साधु हो गए थे। उनके साधु व्यक्तित्व एवं उनकी वाणी ने इस देश की जनता पर गहरा प्रभाव छोड़ा है। गुरु ग्रंथ साहब में उनके चरित्र का संकलन इसकी पुष्टि करता है। पीपाजी की परिचई तथा भक्तमाल इत्यादि परवर्ती रचनाओं में उनके व्यक्तित्व के लोक-मानस पर पड़े गहरे संस्कारों की व्यंजना देखी जा सकती है। अचलदास और चांपानेर के पटाई रावल जैसिंह की वीरता की छाप अबतक क्षेत्रीय लोक जीवन में विद्यमान है।[२]

गागरोण दुर्ग में सन् १४२३ ई०[3] में अचलदास को वीरगति मिलने पर उसके तीन पुत्रों को अपने भाग्य की परीक्षा में इधर-उधर जाना पड़ा। एक ने दक्षिण गुजरात के चांपानेर दुर्ग पर झंडा गाड़ा, दूसरे ने मेवाड़ राज्य की शरण ली तीसरे ने पूर्व का रास्ता पकड़ा। इसी तीसरे गजसिंह के वंश में भगवंतराय का जन्म हुआ।[४]

<u>गजसिंह ने असोथर वंश की नींव डाली</u> : फतेहपुर गजेटियर पृ० १०२ में इस गजसिंह के संबंध में लिखा है " असोथर के खीची वंश

१- पंजाब, राजस्थान, मालवा, गुजरात और उत्तर-प्रदेश में खीचियों के ठिकाने हैं।

२- गागरोण दुर्ग के खंडहरों में अचलदास की अब तक पूजा होती है तथा शरद ऋतु में गरबानृत्य के अवसरों पर गुजरात-प्रदेश में पटाई रावल जैसिंह का स्मरण किया जाता है। कहते हैं यह कि जैसिंह के प्रजा-पालन और भक्ति से प्रसन्न होकर स्वयं स्वयं दुर्गादेवी ही उनके गढ़ के गरबानृत्य में सम्मिलित होती थीं। एक समय जैसिंह का मन एक नृत्य करती हुई सुन्दरी पर स्खलित हो गया। वह अन्य कोई न होकर स्वयं देवी ही थी और उसने जैसिंह को श्राप दे दिया कि तुम्हें अब नष्ट हो जाना चाहिए, क्योंकि तुमने एक कुमारी पर कुदृष्टि डाली है।

३- ब्रिग्ज फरिश्ता, ४ पृ० ४७६ तथा तबकात-इ- अकबरी ३ पृ० १८३

४- हि०रा० पृ० ८७०

के संस्थापक गजसिंह बताए जाते हैं जो सन १५४३ई० के आसपास खीची बारा (जो मध्यभारत में राघोगढ़ के नाम से विख्यात है) से आकर यमुना तटपर स्थित अहमनी के गौतम राजा की कन्या का पाणि-ग्रहण किया। बाद में अहमनी सहित अनेक गांव दहेज में पाकर वहीं बस गए। गजेटियर की इस सूचना में तीन बातें हैं (१) असोथर वंश के पूर्वज गजसिंह हैं (२) वे खीची दारा (राघोगढ़) से अहमनी आए तथा (३) उनके आने का समय १५४३ ई० के आस-पास है। इनमें से पहली बात असोथर के वंश-वृक्ष, हिन्द राजस्थान और चौहान कुल कल्पद्रुम से पुष्ट है। दूसरी और तीसरी बातें विवादस्पद हैं। अब निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि गजसिंह गागरोण से अहमनी आए थे और वे इतिहास प्रसिद्ध अचलदास के पुत्र थे। राघोगढ़ की अपेक्षा उनकी समीपता खिलचीपुर के परिवार से है।[१] गजसिंह के अहमनी आने का समय १५४३ ई० न होकर १४२३ ई० के बाद ही मानना होगा।[२] गजसिंह का अचलदास के पुत्र होने के प्रमाण मिलने से गजेटियर की तिथि भ्रम-पूर्ण प्रमाणित होती है। समय के निर्धारण के लिए दो प्रमाण हैं (१) असोथर का वंश-वृक्ष जिसकी प्रामाणिकता संवत् १७७६ में लिखे गये जैसिंह विनोद से होती है तथा (२) जैसिंह विनोद में दी गई गजसिंह की चौथी पीढ़ी के राजा साहब देव की गौतमों पर विजय की तिथि संवत् १५५५वि० के आधार पर।[२] जैसिंह विनोद की इस तिथि के अनुसार गजसिंह का समय १४२३ ई० के आसपास का सिद्ध होता है, जो इतिहास सम्मत भी है।[३] यह ख्यातों से भी प्रमाणित है। भारत राज्य-मंडल और चौहान कुल कल्पद्रुम ने

१- खिलचीपुर और असोथर के सम्बन्ध तब से लेकर अबतक बने हुए हैं। भाट-चारण हर दो तीन वर्ष में वंशावली इत्यादि लिख ले जाते हैं। वर्तमान समय में असोथर की गद्दीपर गोद लेने के प्रश्न पर परिवार में आपसी मतभेद होने पर, सबने यह सहमति दी थी कि इस विवाद को हल करने के लिए गोद खिलचीपुर घराने से लिया जाय। यह निर्णय सर्वमान्य रहा। वर्तमान राजा विश्वनाथ सिंह जी खिलचीपुर से गोद लिए गये थे।

२- पन्द्रह सौ पचपन समै रन हनि सत्रु समाज
ऐमनी साहेब देव जू, किये सकल गढ़ राज ' - जैसिंह विनोद

३- साहेब देव गजसिंह की चौथी-पीढ़ी में थे। गजसिंह का समय संवत् १४८० वि० के आस पास है। फारसी इतिहास-ग्रन्थों के अनुसार अचलदास का अंत और गागरोण किले पर मालवा सुलतान का अधिकार सन १४२३ ई० के अंतिम महीनों में हुआ था। तबकात-इ-अकबरी (अ०अ०), ३, पृ०१८३ ब्रिग्ज फरिश्ता, ४ पृ० ४७६। इस प्रकार एक पुश्त के लिए सामान्यतया बीस पच्चीस वर्ष का समय निर्धारित करने पर इतिहास दृष्टि से साहेब देव का समय ठीक जान पड़ता है।

भी इसी का समर्थन किया है । इन प्रमाणों के अतिरिक्त दशहरे के अवसर पर असोथर में एक छंद पढ़ा जाता था लेखक के पिता जी को उसकी केवल प्रथम पंक्ति का ही स्मरण है :

' पीपावंश कल्याण भोज के अचल बखानौ ।

इससे भी इसी निष्कर्ष की पुष्टि होती है कि गजसिंहअचलदास के ही पुत्र थे । इन सारे प्रमाणों को प्रत्यक्ष करने पर गजेटियर की तिथि को ठीक नहीं कहा जा सकता ।

भगवंतराय के पूर्वजों का वृत्त : गजसिंह का समय निश्चित हो जाने पर आगे का इतिहास महाकवि देव की वाणी में सुरक्षित मिल जाता है ।

स्थानीय अनुश्रुतियां इसकी पुष्टि करती हैं । जैसिंह विनोद के अनुसार ' गजसिंह गंगा स्नान के लिए प्रयाग आए हुए थे । यहीं उनकी गौतम राजा से भेंट हुई । मुसलमानों से संत्रस्त गौतम राजा ने इनकी सहायता मांगी । दोनों शक्तियां मिल गईं और संयुक्त प्रयास से उस क्षेत्र से मुसलमानों का आतंक समाप्त कर दिया गया । गौतम राजा ने अपनी कन्या इनके साथ ब्याह दी और अझ्झी का किला दहेज में दे दिया । कुछ दिनों बाद अपने पुत्र जैसिंह कोअझ्झी का राज्य देकर एवं ननिहाल के संरक्षण में रखकर गजसिंह अपने पूर्वजों की भूमि में लौट गए । मातृवंश की संरक्षकता में रहने के कारण वत्स गोत्रीय जैसिंह गौतम गोत्रीय कहलाए । जैसिंह अत्यंत वीर, निर्भीक, दानी एवं गुण ग्राहक थे । इनके पुत्र का नाम पाल्हन देव था, जिसकी सेवा में गौतमों ने नित्य नवीन भाव दर्शाए । पाल्हन देव के पुत्र साहब देव के समय में यह स्नेह-संबंध नहीं निभा । अपितु राज-काज के प्रश्नों को लेकर १५५५ विक्रमी में युद्ध हो गया, जिसमें गौतमों की पराजय हुई । अब अझ्झी गढ़ की अखंड सीमा पर साहब देव का राज्य हो गया । साहबदेव के वंशक्रम में क्रमश: कूरम देव, डोमनदेव, जाजादेव, प्रतापसिंह और परशुराम सिंह हुए । परशुराम सिंहकेपुत्र का नाम हरिकेश था । इनके दो प्रचलित नाम थे । एक हरिकेश सिंह और दूसरा अड़ारूसिंह । मुहम्मद कवि को छोड़कर हिन्दी के सभी कवियों ने हरि केश सिंह नाम का व्यवहार किया है जबकि, मराठा एजेंटों तथा फारसी के इतिहास

लेखकों ने उदाभ्रू, अजाजू, अजाहू और अड़ाभ्रू सिंह नाम दिये हैं। मालूम ऐसा होता है कि उच्चारण और लिखावट भेद के कारण ही 'अड़ाभ्रू' शब्द के कई रूप हो गये हैं। संभवत: यह नाम उन्हें अपने गांव के भाई बन्दों से उस समय मिला होगा जब वे अपने खेत में डेरा - जिसे स्थानीय भाषा में 'अड़ार' कहते हैं, में बसकर खेती करते रहे होंगे। यह नाम उनकी इसी विधनता का प्रतीक है। इस प्रकार उनके हरिकेश और अड़ाभ्रू दोनों ही नामों के प्रचुर उल्लेख मिलते हैं। हरिकेश सिंह के देव सेनापति षड़ानन के पौरुष की समता करने वाले ६ पुत्र उत्पन्न हुए, जिनमें से अरिमर्दन, भगवंतराय और सभासिंह विशेष प्रतिभावान थे। भगवंतराय का वयक्रम से दूसरा स्थान था किन्तु वे धैर्य आदि गुणों में सर्व प्रमुख थे। इन्होंने गाजीपुर को अपने वाहु-विक्रम से जीता और उस पर शासन करने लगे। इनके यज्ञ, योग, जप इत्यादि से प्रसन्न होकर भगवान ने इन्हें तीन फल धर्म, अर्थ और काम की भांति रूपराय, कीरत सिंह और जैसिंह को पुत्र रूप में प्रदान किया।'[१]

मध्यकाल के इतिहास में वंश-परम्परा को प्रेरणा-स्रोत के रूप में व्यापक स्वीकृति मिली थी। लगभग सभी स्वाभिमानी राजा और सामंतों के प्रयत्नों में इसकी भूमिका प्रेरक-रूप में विद्यमान रही है। दरबारी कवि राजाओं के पूर्वजों की कीर्ति-गाथा को स्वर-बंद करते थे। कुछ स्वाभिमानियों ने तो इस पर अपनी पूरी शक्ति लगाई जैसे राजसिंह ने मान कवि से राज-विलास की रचना करवाई एवं बूंदी के हाड़ाओं ने सूर्यमल्ल से 'वंशभास्कर' लिखवाया। चारण-भाटों का प्रत्येक दरबार में निश्चित रूप से स्थान सुरक्षित था। युद्ध आदि अवसरों पर उत्साह संचार के लिए इनकी वाणी ने सदैव सहयोग किया है। भगवंतराय के व्यक्तित्व के निर्माण में उनकी वंश-परम्परा का बहुत बड़ा ऋण है। उनके व्यक्तित्व में शस्त्र एवंशास्त्र की निष्णातता उन्हें पूर्वजों से मिली थी। उनके हृदय में इस परम्परा के प्रति अत्यंत आत्म-गौरव एवं श्रद्धापूर्ण भाव

१- जैसिंह विनोद

थे ।[१] उनके अंतिम युद्ध की अप्रतिम वीरता को बन्दीजनों के विरद ने ही स्फुरित किया था ।[२] मालवा देश से आने के कारण उन्होंने अपने साथ विक्रम भोज की परम्परा को भी सार्थक करना चाहा था ।[३] अकबर के समय में राघौगढ़ की विशेष उन्नति हुई थी । शार्ंगधर न्याय से उन्होंने इस यश को भी अपना लिया था ।[४] इस प्रकार हम देखते हैं कि भगवंतराय ने एक बड़ी ही गौरवशाली परम्परा को अपने वंशगत इतिहास के माध्यम से प्राप्त किया था ।

भगवंतराय की जीवनी

<u>जन्मकाल का अनुमान</u> : फतेहपुर गजेटियर में लिखा है भगवंतराय के पिता अपना खेत जोत रहे थे । उनके खेत की मेंड़ से लगा हुआ एक अहीर का खेत था । अहीर दोपहर के समय अपने घर गया था पर हरिकेश सिंह घर नहीं गए और वृक्ष की छाया में ही विश्राम करते रहे । शीघ्र ही उन्हें थके हुए होने से नींद आ गई । अहीर मित्र ने गांव से लौटने पर उन्हें दूर से इसी अवस्था में देखा । वह पुत्र जन्म का सुख-संवाद हरिकेश सिंह को देने के लिए जैसे ही आगे बढ़ा कि उनके मस्तक पर फन की छाया किये हुए एक सर्प को बैठे देखा; यह देखते ही वह भय से सहम गया । सर्प मस्तक पर पड़ने वाली धूप को अपने फन से आड़ कर रहा था । अहीर के चिल्लाने से सांप वहां

१- 'पीपावंश कल्यान भोज के अचल वखानों' प्रतीक का छंद असोथर में पिछले दिनों तक लोगों को याद था । इस पृष्ठभूमि में भगवंतराय की यह उक्ति देखिये :

नाम प्रसिद्ध अहै जग में मम
भूमि तजे फल कौन जिये है ' रासा०

२- छत्र धारि छितिपाल आए
विरद बन्दी जनन गाये (विरुदावली०)

३- भयेते विक्रिम भोज के पीछे मालव भूप '
(जैसिंह विनोद)

४- सिरोज पति अइफी नृपति खीची जाजा देव '
(जैसिंहविनोद की यह पंक्ति राघौगढ़ की कीर्ति
(अकबर के समय) से समन्वित है ।)

से सरक गया और हरिकेश सिंह की नींद भी टूट गई । वे उठकर बैठे । उन्हें स्वस्थ पाकर अहीर ने परमप्रसन्नता प्रकट की एवं पुत्र जन्म का संवाद दिया । किन्तु पिता का मन इतना अधिक कुंठित था कि इस संवाद से उनके दाोभ की अग्नि और अधिक प्रज्वलित हो गई । वे अपने थके मन से अपना खेत जोतने में पुन: लग गये । कहते हैं कि भैसों के आगे बढ़ते ही हल की फाल सुवर्ण की सांकल में अटक गई । इस सांकल में अशर्फियों से भरे हुए सात स्वर्ण कलश बंधे थे जो हरिकेश सिंह के हाथ लग गए ।[1]

अनुश्रुति द्वारा पुष्ट गजेटियर की इस उद्धरणी से दो निष्कर्ष निकलते हैं - (१) भगवंतराय का जन्म दिन के समय हुआ था, लगभग मध्यान्ह में । (२) महीना आषाढ़ से लेकर क्वार के बीच कोई भी हो सकता है, जब किसान अपना खेत जोतते हैं । संभावना आश्विन की ही अधिक है । इसी माह की धूप में विशेषरूप से थकान उत्पन्न होती है । वर्ष का विचार भी किया जा सकता है । उनके अंतिम युद्ध की तिथि १७३५ ई० निश्चित है । इस समय वे ६० वर्ष के भीतर ही थे । सदानंद कवि के रासा से इसका संकेत मिलता है ।

कवि सदानंद भगवंतराय के प्रतिपदाी सादत खां को ६० वर्ष का बूढ़ा बताकर भगवंतराय के पौरुष को ललकारता है, इससे प्रकट यह होता है कि दूत की दृष्टि में भगवंतराय से सादत खां अधिक आयु का था । वे इस समय ५० वर्ष से कम भी नहीं थे, इसके लिए भी आधार है । देव ने १३ वर्ष पूर्व उनके तीसरे पुत्र जैसिंह के नाम से ' जैसिंह विनोद ' की रचना की थी । ग्रन्थ की रचना या तो शिक्षा के लिए थी अथवा जैसिंह के नाम की प्रसिद्धि के लिए । संभवत: १३ वर्ष पूर्व जैसिंह १२ वर्ष से कुछ ऊपर रहे होंगे । इस प्रकार १७३५ में जैसिंह २५ वर्ष से कुछ ही ऊपर पहुंचे होंगे और उनके सबसे जेठे भाई रूपराय लगभग ३० वर्ष की आयु के रहे होंगे । यदि रूपराय को २०-२२

१- फतेहपुर पृ० १०२

वर्ष की अवस्था में भी उत्पन्न हुआ मानें तो भी भगवंतराय की अवस्था १७३५ में ५० वर्ष से ऊपर रही होगी । इन संकेतों के आधार पर हम वीरगति के समय भगवंतराय की आयु का ५५ वर्ष के आसपास होने का ही अनुमान कर सकते हैं । इस प्रकार इनका जन्म काल लगभग १६८० ई० या उसके आसपास मानना ठीक होगा ।

पिता की आर्थिक स्थिति : फतेहपुर गजेटियर के अनुसार भगवंतराय के पिता हरिकेश सिंह के हिस्सेदारों ने उन्हें पैतृक सम्पत्ति से वंचित रखा था अत: वे अत्यन्त निर्धनता में अपना जीवन बिता रहे थे । बैलों के स्थान पर खेत जोतने के लिए उन्हें भैंसों से काम चलाना पड़ता था । उनके हृदय की निर्धनता जन्य पीड़ा की व्यंजना गजेटियर की इस घटना से होती है कि 'पुत्र जन्म का संवाद पाकर भी पिता प्रफुल्लित न हुए और उलटे अपना खेत जोतने का काम पुन: करने लगे ।'

प्रारंभिक संभावनाएं : किंवदंती के अनुसार भगवंतराय के जन्म से ही परिवार की निराशा और उसका दारिद्र्य-संकट दूर हो गया था । इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि भगवंतराय के जन्म को माता, पिता परिवार और संबंधियों ने अपने लिए अत्यन्त शुभ माना होगा तथा उसी अनुपात में उन्हें आदर और स्नेह दिया होगा । दारिद्र्य और कंगाली के अंधकार के बाद समृद्धि और सम्पन्नता प्रात: काल के उल्लास की भांति सम्पूर्ण वातावरण में उतरी होगी और इसी वातावरण में भगवंतराय का जीवन-कमल प्रस्फुटित हुआ । परिवार ने दुखों और उत्पीड़नों को झेलकर अब आशा और विश्वास के नए जीवन में पदार्पण किया, यह भाग्योदय दैवी चमत्कार की भांति था । अत: आस्तिकता की भावना विशेषरूप से दृढ़ हुई होगी । बालक भगवंतराय को उन सभी संघटनों का केंद्र-बिन्दु मान लिया गया होगा इसलिए उनके व्यक्तित्व के सर्वतोमुखी विकास को नियाजित करने वाली बड़ी ही अनुकूल मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि निर्मित हुई । भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों ही क्षेत्रों में उनके विकास के लिए अब परिवार में प्रेरणा-स्रोत विद्यमान थे ।

शिक्षा-दीक्षा : उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर सहज में ही यह अनुमान लग जाता है कि भगवंतराय की शिक्षा-दीक्षा की समुचित व्यवस्था

आरंभ में ही की गई होगी । हरिकेश सिंह ने अपनी सम्पन्नता का लाभ लेकर शस्त्र एवं शास्त्रों में निपुण तथा निष्णात कला-मर्मज्ञ आचार्यों द्वारा उनकी शिक्षा का प्रबंध किया होगा । अपनी लघु वय से ही अनेक साहसी अभियानों एवं संघर्षों में प्रवृत्त होने वाले व्यक्ति को यदि आरंभ में ही शिक्षा न मिली होती तो वह परिपक्वता शायद न देखने को मिलती जो भगवंतराय ने उपलब्ध की थी । उनकी आरंभिक शिक्षा-दीक्षा के प्रकट विवरण नहीं ज्ञात हैं, परिणाम को देखकर उनकी शिक्षा-दीक्षा का अनुमान किया जा सकता है । उनकी शारीरिक क्षमता, शस्त्र निपुणता, अश्वारोहण, व्यूह रचना एवं सैन्य-संचालन आदि युद्ध-क्षेत्र में प्रकट होने वाली योग्यताओं की पृष्ठभूमि में शस्त्र और युद्ध विद्या की एक सुनिश्चित शिक्षा का आधार अवश्य मानना होगा, जिसे परिस्थितियों और अनुभवों ने परिमार्जित और परिपुष्ट किया । इसी तरह उनकी कविताओं के अवलोकन से पुष्ट होता है कि उन्होंने संस्कृत के काव्य-ग्रंथों, धर्म ग्रंथों और हिन्दी काव्य का सम्यक प्रकार से अध्ययन और मनन किया था । वे फारसी भाषा और साहित्य से भी अच्छी प्रकार परिचित थे एवं उसमें कविता भी कर सकते थे । इन्हीं तथ्यों के आधार पर उनकी शिक्षा का अनुमान लगता है ।[१]

वस्तुत: भगवंतराय का दीक्षा-गुरु स्वयं उनका युग था, जिसमें वे जन्मे थे । उनके जीवन के प्रारम्भिक २५ वर्ष औरंगजेब के शासनकाल में बीते । भारतवर्ष के तत्कालीन इतिहास में यह समय अत्यधिक तनावपूर्ण था, इसी की प्रतिक्रिया स्वरूप उनका व्यक्तित्व संगठित हुआ । जनता एवं अनेक जन-नायकों के साहस और दृढ़ता के आख्यान एक ओर उन्हें वीरता के द्वारा कीर्ति-वरण के लिए प्रोत्साहित करते थे तो दूसरी ओर शासन की अनीति और अत्याचार उन्हें लोहा लेने के लिए बाध्य कर रहे थे । वास्तव में इसी युग विशेष के कारण उनका आदर्श भी शिवाजी, छत्रशाल, राजसिंह, दुर्गादास एवं गुरु गोविन्दसिंह आदि का ही अनुसरण कर रहा था ।

१- अगले अध्याय में उनके कृतित्व विवेचन के प्रसंग में यह स्वत: स्पष्ट हो जावेगा ।

प्रामाणिक जीवनी : असोथर की एक अनुश्रुति के अनुसार भगवंतराय ने सबसे पहले असोथर से दक्षिण पूर्व लगभग १० मील की दूरी पर स्थित मसरौल ग्राम की गढ़ीको अपने अधिकार में किया था । वहां के जमींदार का नाम कोकलित राय बताया जाता है । ये जाति के कायस्थ थे । शिकार-खेलते हुए एक बार भगवंतराय उधर ही जा निकले तथा पास तक पहुंचने के कारण राय के यहां भी चले गए । राय के यहां उन्होंने उसकी पलंग के सिरहाने का आसन ग्रहण किया । एक किशोर को सिरहाने बैठता देखकर राय को अपनी अवहेलना का आभास हुआ तथा उसने इनके पिता की प्रारम्भिक दरिद्रता के नाम पर इनको तिरस्कृत किया । भगवंतराय इस अपमान को पीकर चुप चाप वहां से चले आए । निकट ही भविष्य में वेतन न पाने के कारण राय के यहां से अन्यत्र नौकरी के लिए प्रस्थान करने वाले असंतुष्ट सिपाहियों का एक दल भगवंतराय को कहीं रास्ते में मिल गया । भगवंतराय ने उनसे भेंट होने पर उन्हें प्रोत्साहित किया और आश्वासन दिया कि यदि वे राय के ऊपर आक्रमण करने को प्रस्तुत हो जायं तो भगवंतराय उनका समस्त वेतन चुकता करके उन्हें अपना सैनिक बना लेंगे । इसी सेना की सहायता से मसरौल जीत कर उन्होंने अपने तिरस्कार का बदला चुकाया तथा अपनी योग्यता और अपने साहस से सबको चकित कर दिया । यह उनकी पहली सफलता है । इसका सन सवंत नहीं ज्ञात है । और न इसके बाद की ही घटनाएं किसी को ज्ञात हैं । संभवत: लिखित रूप से उनके नाम का सर्व प्रथम उल्लेख ३० वर्ष की आयु में श्रीधर कवि के जंगनामा में हुआ । नवम्बर १७१२ ई० में जहांदारशाह और फर्रुखसियर के मध्य लड़े गए खजुहा के युद्ध में वे फर्रुखसियर के पक्षधर थे । कड़ामानिकपुर और कोड़ा जहानाबाद के फौजदारों के साथ ही उन्हें भी युद्ध में सम्मिलित होना पड़ा होगा । जंगनामा के अनुसार इस युद्ध में उनकी वीरता और उनकी प्रतिष्ठा प्रमाणित होती है ।[१] विजेता का पक्षधर होने के कारण इन्हें अनेक लाभ हुए होंगे ।

१- सरदार सिगरे हाकिदै दौरे दिलेर तहां तबै
भगवंतराय, दिवान कायथ बीरवर काकोरिया

फ़० जं०

सर्व प्रथम इन्हें इनकी अबतक की जीती हुई भूमि की मान्यता प्राप्त हुई होगी एवं सूबेदारों की दृष्टि में इनका सम्मान और प्रभाव बढ़ गया होगा । साथ ही मुगलों की युद्ध-शैली, उसकी विशेषताएं और त्रुटियों को भी निकट से देखने समझने का अवसर मिला । आसपास के क्षेत्रों में इनके शौर्य और इनकी वीरता के कारण इनकी धाक जम गई होगी । इसी तिथि के लगभग उन्होंने गाजीपुर के पैनागढ़ पर भी अधिकार करके उसका पुनर्निमाण करा लिया होगा एवं असोथर को छोड़कर अब वे वहीं रहने लगे ।[१] संभवत: खजुवा के युद्ध के उपरांत भगवंतराय की मुगलों से नहीं बनी और वे शासन के विरोधी बनाकर ही अपनी शक्ति को संगठित और परिपुष्ट करते रहे ।[२] उनकी विद्रोही शक्ति की धाक समस्त अन्तर्वेद(मध्यदेश) में १७२० ई० तक फैल गई थी और उनका प्रभुत्व भी इस क्षेत्र के छोटे-छोटे जमीदारों पर स्थापित हो गया था । उनके संबंध न केवल मध्यदेश में ही थे वरन् वे अवध बुंदेलखण्ड और बघेलखण्ड के क्षेत्रों में भी थे । महाराज छत्रशाल बुंदेला, बूंदी के रावराजा बुद्ध सिंह हाड़ा, डौंड़ियाखेर के राजा मर्दन सिंह इत्यादि से उनके बड़े ही घनिष्ठ संबंध थे ।[३] इलाहाबाद के नागर सूबेदार के विद्रोह के समय (१७२० ई० के आसपास) इन्होंने भी सूबेदार का ही पक्ष लेकर केंद्रीय सत्ता का विरोध किया था । भगवंतराय की हिन्दू भावना को ध्यान में रखकर सर जे०एन०सरकार के

१- " दीरघ लघु भगवंत भो, गाजीपुर पुरहूत " जैसिंह विनोद - ग्रंथ रचना की तिथि ई० सन् १७२२ के पहले ही भगवंतराय गाजीपुर के स्वामी हो गये होंगे ।

२- " आगरे की पौर ते प्रयाग लौं पुकार उठी देव उपहार याकि लैहु अपहार हीं " " जैसिंह विनोद " की इस उक्ति से भी उनके मुगल विरोधी होने की ध्वनि मिलती है ।

३- स्थानीय अनुश्रुति के अनुसार भगवंतराय की छोटी बहन भगवंत कुंवरि का व्याह मर्दन सिंह के साथ हुआ था । तुलना कीजिये बैसवारा गौरव पृ० ३२ । बुद्धसिंह हाड़ा के साथ इनके सम्बंध छत्रशाल के माध्यम से संभव जान पड़ते हैं ।

के शब्दों को देखिये "आसपास की समस्त हिन्दू शक्तियां नागर सूबेदार की सहायता के लिए संगठित हो गई थीं" तथा "बुद्धसिंह हाड़ा मुगलों का पुराना शत्रु स्वयं सहायता के लिए उपस्थित हुआ एवं छत्रशाल को भी सहायता के लिए भड़काया[1]" इनके साथ भगवंतराय के गठबंधन संभवत: इससे पहले से ही रहे होंगे यदि यह नहीं भी माने तो इस समय अवश्य ही घनिष्ठ हो गये होंगे ।

मुगलों से कट्टर वैमनस्य और छत्रशाल से मित्रता : इस विद्रोह के समय तक भगवंतराय ने शक्ति अर्जित करके अपनी स्थिति को सुदृढ़ कर [illegible] लिया था । इस कार्य को उन्होंने अत्यन्त कुशलता और दूरदर्शिता से पूरा किया, अन्यथा उन जैसी साधारण स्थिति के व्यक्ति का मध्यदेश की समतल भूमि में पनप सकना नितांत असंभव हुआ होता । यह उनकी प्रतिभा की सच्ची कसौटी थी, जिसमें वे खरे उतरे । १७२१-२२ में वे मुगलों के उग्र विरोधी के रूप में इतिहास में चित्रित हैं । अब तक उन्होंने मुगलों की तथा मुगलों के विरोधियों की युद्ध-शैलियों को अच्छी प्रकार से परख लिया था । इस तुलनात्मक ज्ञान के सहारे उन्होंने अपनी युद्ध शैली को नवीन रूप दिया था जो अत्यन्त सफल सिद्ध हुआ । एक सैनिक और सेनापति के रूप में उनके भीतर आत्म-विश्वास की जो पराकाष्ठा मिलती है,उसका आधार यही था । छत्रशाल के साथ मिलकर उन्होंने बुंदेलखंड में जो उपलब्धियां की थीं उनके विवरण नहीं ज्ञात हैं किन्तु अनुश्रुतियों की परम्परा में वे अब तक सुरक्षित हैं । तत्कालीन मुगल साम्राज्य के लिए वे अत्यधिक घातक थीं इसी लिए छत्रशाल को नष्ट करने के लिए बंगश नवाब ने बुंदेलखंड पर अपना इतिहास-प्रसिद्ध आक्रमण किया था ।[2]

मुहम्मद खां बंगश के बुंदेलखंड पर हुए आक्रमण के समय इनकी स्थिति का अनुमान : भगवंतराय की गति-विधियों पर पुन: एक आवरण पड़ जाता है । प्रश्न यह उठता है कि बुंदेलखंड

१- लै० मु० भाग २ पृ० ६

२- लै० मु० भाग-२ पृ० २३१

के 'गजेन्द्र ' छत्रशाल के ऊपर पड़े संकट में उन्होंने सहायता की अथवा तटस्थ होकर तमाशा देखते रहे ? तत्कालीन उपलब्ध ऐतिहासिक विवरणों में उनके नाम का उल्लेख नहीं मिलता है। फिर उनके मित्रता के कर्तव्य में संदेह करने की गुंजाइश नहीं। इस कथन के निम्न आधार हैं - (१) यदि इस संकट-घड़ी में इन्होंने छत्रशाल से संबंध विच्छिन्न कर लिया होता तो इन्हें विश्वास-घाती माना जाता और भविष्य में इनके संबंध किसी भी प्रकार छत्रशाल से नहीं रह सकते थे। किन्तु इतिहास में अनेक प्रमाण हैं कि इनके और छत्रशाल के संबंध भविष्य में निरन्तर दृढ़ होते गए [१]. (२) बंगश नवाब की छत्रशाल के साथ संधि हो जाने पर भी इन्होंने अपना विद्रोही स्वर नहीं बदला था। बुंदेलखंड से लौटकर जब बंगश दिल्ली गया था तब भी इन्होंने पूर्व की ओर इलाहाबाद की सीमा दबाने का प्रयत्न किया था।[२] यदि ये नवाब से दबकर मिल गए होते तो इस अभियान का उल्लेख न हुआ होता तथा भयवश विद्रोही स्वर से विमुख होने पर भी इस की संभावना के लिए स्थान नहीं था। अत: यही स्वीकार करना पड़ता है कि इन्होंने अपनी सम्पूर्णशक्ति के साथ छत्रशाल का समर्थन किया था। मुहम्मदशाह रंगीले के आदेश के होते हुए भी कोड़ा इत्यादि के फौजदार जो बंगश की सहायता में नहीं पहुंच सके उसका रहस्य स्थानीय परिस्थितियों की विकटता में हो सकता है। इस समय मुगलों की शक्ति को आसपास अटकाए रखना ही छत्रशाल की सबसे बड़ी सहायता थी। इन्होंने इसी का निर्वाह किया होगा। सादत खां इनकी सीमा को इस समय तक दो क्षेत्रों से घेर चुका था। शेष दिशाओं में बंगश नवाब की शक्ति फैली हुई थी। इस संकट-घड़ी में इन्होंने अपने अस्तित्व की रक्षा की तथा दो में से किसी को भी यह साहस न होने दिया कि इनकी सीमा में प्रवेश करें। इस युद्ध में छत्रशाल को यही इनकी सहायता और सहयोग था।

तरहुवां (चित्रकूट) के सोलंकियों का क्षेत्र इनके सबसे अधिक निकट पड़ता था।

१- पेशवा दफ्तर० भाग १४-पत्र सं० ६ तथा भाग १५ पत्र संख्या १०

२- बंगश० पृ० ३०५

संभवत: इसी भूमि से होकर इनका और छत्रशाल का संबंध बना रहा होगा । सोलंकियों की तरहुंवा के पतन के उपरांत बची हुई सैना ने संभवत: अंतिम रूप से इन्हीं के यहां आकर आश्रय ग्रहण किया था,[१] यह भी प्रमाणित करता है कि बुंदेलखंड की राजनीतिक गति-विधियों में इनका सहयोग और समर्थन छत्रशाल को प्राप्त था ।

कोड़ा जहानाबाद की फौजदारी पर अधिकार और फौजदार की पुत्री से अपने पुत्र का व्याह : भगवंतराय के अंतिम ३-४ वर्षों के संघर्षों का इतिहास कई स्रोतों से प्रकाश में आया है । इस समय तक भगवंतराय की शक्ति इतनी प्रबल हो गई थी कि सूबेदारों में भी इनका सामना कर सकने का साहस नहीं था ।[२] बादशाह और उसके प्रधान मंत्री इनको समूल विनष्ट कर देने में ही अपना कल्याण देख रहे थे । प्रधानमंत्री कमरुद्दीन ने कोड़े के फौजदार को आदेश दिया किन्तु उसे इस प्रयास में बुरी तरह पराजित होकर अपने प्राण गवानें पड़े[३] । खां की समस्त दुर्नीतियों और उसके अत्याचारों के सम्मुख खड़े होकर इन्होंने उसकी मदान्धता की चुनौती स्वीकार की और प्रतिशोध में खां के हरम की बेगमों से अपने मित्रों और संबंधियों की सगाई करा दी ।[४] स्वयं भी अपने सबसे बड़े पुत्र रूपराय का व्याह प्रधान मंत्री की भतीजी - जो निसार खां की पुत्री, अनीस के किया[५] और कोड़े की फौजदारी को भी अपने अधिकार में कर लिया तथा उसके शासन की व्यवस्था नीतिवान व्यक्तियों के हाथों में सौंपी।जांनिसार खां

१- विरुदावली० में आये सोलंकियों के उल्लेख से संकेत मिलता है ।

२- तुलना कीजिये सा० जा०इ०-८ पृ० ३४१

३- जंगनामा० १७१ अ

४- मीरातुल० पृ० १७१ तथा सियारुल० १ पृ० २६६

५- मिरातुल० पृ० १७१ अ

६- सियारुल०पृ० २६६ तथा रासा०

प्रधान मंत्री कमरुद्दीन खां का साला था इस लिए प्रधान मंत्री की पत्नी ने बार बार अपने भाई का बदला लेने के लिए उसे उत्तेजित किया । भगवंतराय ने मुसलमान कन्याओं को हिन्दू बना लिया था इसलिए वे न केवल सल्तनत के ही वरन् समस्त मुस्लिम धर्म के शत्रु थे ।[1] इसी लिए उनको नष्ट करने की समस्या मुस्लिम शासन के लिए सबसे प्रमुख थी । दक्षिण में मराठों को पराजित करने से भी अधिक महत्व इनको मिटाने के लिए दिया गया । मुहम्मद शाह द्वारा दक्षिण में कमरुद्दीन खां के नाम लिखे गये पत्र से यह स्पष्ट है ।[2] इस धर्म-संकट की घड़ी में सारी शक्ति लगाकर इनको नष्ट करना ही मुगल राज्य को इष्ट हो गया था । इन्होंने भी अपना लक्ष्य केवल कोड़े की विजय तक ही नहीं सीमित रखा था वरन् आगरा और दिल्ली से भी मुगलों को उखाड़ देना चाहा । छत्रशाल के पुत्रों हिरदेशाह और जगतराय एवं अन्य राजपूतों को मिलाकर वे पश्चिम में आगरे की ओर कालपी से भी आगे पहुंच चुके थे ।[3]

<u>कमरुद्दीन खां से संघर्ष</u> : कमरुद्दीन खां ने बादशाह के पत्र के साथ ही अपनी विशाल सेना को सिरोज के रास्ते से उत्तर की ओर मोड़ दिया । मार्ग में दतिया और ओरछा के बुंदेले राजाओं को भी साथ में ले लिया । इस सेना ने जमुना उतर कर गाजीपुर के दुर्ग में भगवंतराय को घेर लिया । एक पहर दिन चढ़े से लेकर काफी रात ढले तक दुर्ग के भीतर से गोलाबारी होती रही । किले को तीन ओर से घेर लिया गया, परन्तु भगवंतराय रात को बच कर निकल गये ।[4] असोथर होते हुए वे जमुना उतर कर बुंदेलखंड पहुंच गये । किले को दूसरे दिन जीत लिया गया और उसका अधिकार दतिया के रावराजा रामचन्द्र बुंदेल को सौंप दिया गया जिसने उसे तोड़ कर मिट्टी में मिला दिया ।[5] कोड़ा की फौजदारी ख्वाजा मीर के अधिकार में आ गई । कमरुद्दीन

१- सा० जा० इ०८पृ० ३४१

२- मुहम्मदशाह ने लिखा था ' वाटर प्राहिबिटेड एंड वाइन इज लाफुल ' अर्थात् बड़ी अनहोनी स्थिति है । लै०मु० भाग-२ पृ० २७७

३- पेशवा दफ्तर० १४ पत्र सं० ६

४- बंगश० पृ० ३२५-२६ लै०मु० पृ० २७७, मीरातुल० पृ० १७१ ब

५- मीरातुल० पृ० १७१ ब

इतने से ही सन्तोष करके लौट जाने वाला न था, वह बुंदेलखंड में भी पीछा करके भगवंतराय को सदा के लिए समाप्त कर देना चाहता था ।[१] किन्तु वर्षा ऋतु के कारण जमुना में बाढ़ आ गई थी । इस लिए वह इसी तट से बांदा के मराठा एजेंट को फोड़कर अपने मनोरथ को पूरा करने के प्रयत्न में लगा रहा, इस युक्ति से भी सफलता मिलते न देख वर्षा से ऊब कर वह अपने प्रतिनिधि की नियुक्ति करके स्वयं दिल्ली वापस चला गया । अपनी असफलता की खीझ में उसने मथुरा के मंदिरों में उत्पात भी किया ।[२]

पुन: अपने प्रदेश पर अधिकार : इधर भगवंतराय, प्रधान मंत्री के पीठ फेर कर जाते ही अपने प्रदेश को पुन: जीतने के लिए जमुना उतर कर अन्तर्वेद की भूमि में खड़े हो गए । राव रामचन्द्र तथा ख्वाजामीर ने भी सामना करने के लिए अपनी सेनाओं को लेकर जमुना के तट पर मुठभेड़ की । दोनों ही पक्षों के लिए यह भाग्य निर्णायक संग्राम था । भगवंतराय ने अद्भुत पराक्रम प्रदर्शित किया । ख्वाजा मीर गोली से घायल हो गया और उसका हाथी युद्धभूमि से भाग निकला । साहबराय नामक सामन्त ने साहसपूर्वक सामना तो किया किन्तु उसके भाग्य में भी मृत्यु बदी थी । युद्धभूमि की यह परिस्थिति देखकर स्वयं राव रामचन्द्र ने अपने हाथी को भगवंतराय के सामने बढ़ा दिया किन्तु वह भगवंतराय के बर्छे के प्रहार को न झेल सका और रणभूमि में जूझ गया । उसके गिरते ही दिल्ली की सेनाओं में अंधेरा छा गया । नेतृत्व विहीन होकर निराशा में वह इधर उधर भाग निकली । विजेता भगवंतराय ने अपने प्रदेश पर अपना अधिकार पुन: प्राप्त कर लिया ।[४]

इस समय भारतवर्ष की राजनीतिक परिस्थिति में बड़ी उथल पुथल थी ।

१- पेशवा दफ्तर भाग-१४ पत्र सं० ६

२- पेशवा दफ्तर भाग-१४ पत्र सं० ६

३- मीरातुल० पृ० १७१तथा जंगनामा०

४- मीरातुल० पृ० १७१ ब जंगनामा०, विरुदावली० व शंभुनाथ मिश्र के छंदों पर आधृत ।

दिल्ली के उच्च अधिकारियों और सूबेदारों की दलबंदियों के अतिरिक्त हिन्दुओं में भी संगठन के प्रयत्न हो रहे थे । संभवत: हिन्दू सामन्त खुल कर इसलिए नहीं मिल पाए थे कि उनमें अपने व्यक्तिगत हितों के प्रश्न कुछ अधिक प्रबल थे । फिर भी उनके भीतर हिन्दू भावना और हिन्दू राज्य के स्वप्न जड़े जमा चुके थे । छत्रशाल का बंगश को अपने राज्य का एक चप्पा भी न देकर बाजीराव को एक तिहाई भूमि बांट देना इसका प्रमाण है । अजित सिंह द्वारा दिल्ली हरम से अपनी कन्या को वापस लाने में इसी प्रवृत्ति का प्रस्फुटन कई वर्ष पहले देखा जा चुका था ।[1] सवाई जैसिंह की गति विधियां भी इसी दिशा में मोड़ ले रहीं थीं ।[2] मराठों में इसका खुला प्रचार था एवं भगवंतराय ने तो मध्यदेश में खुलकर इसकी उद्घोषणा कर दी थी ।[3] आन्तरिक और बाह्य समस्याओं के कारण दिल्ली शासन के सामने एक विकट परिस्थिति उत्पन्न हो गई थी ।

सादत खां के साथ युद्ध और दुर्जनसिंह के हाथों मृत्यु : अवध के नवाब सादत अली खां की इस समय विशेष ख्याति हो रही थी । वह योग्य, स्वाभिमानी और महत्वाकांक्षी व्यक्ति था । मुहम्मद शाह ने इस समय दो समस्याएं सुलझाने के लिए उसके सामने रखी होंगी । एक भगवंतराय की दूसरे जैपुर के सवाई जैसिंह की ।[4] सादत खां ने संभवत: जैसिंह को विजित करना अधिक सम्मानजनक समझकर पहले उसी को लक्ष्य किया । वह अवध की चालीस सहस्त्र दुर्जेय सेना लेकर दिल्ली की ओर चला ।[5] अपने एक नायब मीरखां को उसने मार्ग में गंगा पार उतर कर रसूलाबाद से कर वसूल करने के लिए भेजा ।[6] इस प्रदेश को भगवंतराय अपने अधिकार में किए हुए थे । मीरखां को भगवंतराय ने तहस नहस कर दिया ।[7] यह संवाद

१- लै०मु० भाग-१ पृ० ४२६
२- तुलना कीजिये लै०मु० भाग-२, पृ० २७८
३- `मारि रन फौजैं चलाऊं, जौं दिल्ली की हलाऊं ` विरुदावली०
४- तुलना कीजिये पेशवा दफ्तर०-१४ पत्र संख्या ४२
५- उपर्युक्त साक्ष्यों पर आधारित
६- रासा०- ८, प० ३४३
७- रासा०

पाते ही नवाब के क्रोध का ठिकाना न रहा । अब नवाब ने पहले इसी बला से निबट लेने के लिए अपनी सेनाओं को गंगा की ओर मोड़ दिया । विठूर के पास गंगा उतर कर किनारे-किनारे वह भगवंतराय के दुर्ग गाजीपुर की ओर बढ़ा ।[१] मार्ग में अनेक हिन्दू सामन्त भी सेना में मिल गए । नरवल और खजुहा के मार्ग से नवाब की सेना गाजीपुर की दक्षिण-पश्चिम सीमा पर पहुंच गई। भगवंतराय ने अपने मंत्रियों, बांधवों और सेनापतियों से मंत्रणा करके युद्ध का निश्चय किया ।

इसी बीच नवाब का दूत संधि की शर्तें लेकर दरबार में उपस्थित हुआ, किन्तु भगवंतराय ने अत्यन्त दर्प के साथ नवाब के प्रस्ताव की अवहेलना कर दी तथा सादत खां की चालीस हजार से भी अधिक विशाल सेना[2] का सामना करने के लिए वे अत्यन्त विश्वास के साथ अपनी दस सहस्त्र सेना के साथ गाजीपुर के दुर्ग से बाहर निकले[3] गज अश्व और पैदलों की यह संगठित सैना केशरिया[4] बाना धारण किये हुए दुर्ग से दक्षिण पश्चिम सांखा ग्राम के ऊसर की ओर कार्तिक शुक्लपक्ष मंगलवार संवत् १७९२ के दिन बढ़ी । नवाब की सेना डेरा डालकर यहीं पड़ी हुई थी ।[5] नवाब की सेना भी शीघ्र ही तैयार हो गई । अपनी सैनिक साज-सज्जा से लैस नवाब की सेना अत्यन्त भव्य प्रतीत हो रही थी । परन्तु नवाब की विशालवाहिनी भगवंतराय की सुनियंत्रित और दृढ़ सेना को समक्ष देखकर आतंकित हो गई ।[६] सुनिश्चित स्थान तक पहुंच जाने पर भगवंतराय ने इस

१- रासा० जंगनामा० सा०जा०इ० ८, पृ० ३५१ सियारुल० १-२७० पृ०२७०एवं० ता० हि०इ० ८ पृ०५२

२- तुलना कीजिये फ० नवा० पृ० ४५-५०

३- भगवंतराय के सैनिकों की संख्या अलग अलग बताई गई है । तारीख हिन्दी में २५ हजार, सादत जावेद में ३ हजार और मराठा पत्रों में दस-बारह हजार नियमित सैन्य संख्या मिलती है । एक अनुश्रुति के अनुसार `चौदह सहस्र सुभट रण बांके` बताया जाता है ।

४- जंगनामा और अनुश्रुति

५- रासा० तथा सियारुल०१ पृ० २७०

६- रासा०और विरुदावली०

सेना का नेतृत्व ग्रहण किया[1] और अर्जुन की भांति शंख बजाते हुए प्रतिज्ञा की कि आज मैं नवाब को पराजित करके दिल्ली की नींव हिला दूंगा , अन्यथा स्वयं अपने ही हाथों अपना मस्तक विच्छिन्न कर लूंगा ।[2] इस घोषणा के अनन्तर उन्होंने प्रतिपक्षी सेना में घुस कर आक्रमण करने का आदेश दिया । सेना उनका आदेश पाते ही तीन भागों में फैलकर समुद्र की लहरों की भांति उमड़ती हुई नवाब की सेना के ऊपर तीव्र गति से टूट पड़ी ।[3]

भगवंतराय ने अपनी अग्रिम पंक्ति को नवाब के ऊपर पहुंचने का आदेश दिया तभी दूतों ने नवाब की रक्षा करने वाले अमीर उमरावों तथा हाथियों के व्यूह की सूचना देकर सावधान किया परन्तु उन्होंने इसे सुनकर भी अनसुना सा कर दिया ।[4] स्वामिभक्त अंगरक्षक और आज्ञाकारी सैनिक आदेश-पालन के लिए अपने-अपने अश्वों की वल्गायें ढीली कर तीर गोलियों और गोलों की बौछारों में धंस पड़े[5] आग उगलने वाली तोपें इनके वेग के सामने बेकार हो गईं ।[6] चारों ओर के प्रहारों को झेलते हुए यह सैनिक दल सीधे नवाब के सिर तक जा पहुंचा दूत ने इस आसन्न संकट से नवाब को सावधान किया । आत्मरक्षा के लिए सादत खां को हटना पड़ा ।[7] उसके अत्यन्त

१- विरुदावली० में यह प्रसंग बड़ी ही मार्मिकता से चित्रित है ।

२- विरुदावली०

३- जंगनामा० तथा एक अज्ञात कवि ने इन शब्दों में यह दृश्य प्रस्तुत किया है :

"...... पहुंचो जाइ सादत पै, ऐसे जाइ एवई

दृगन ते पग आगे, पगन ते मन आगे, मन, दृग, पगन में होड़ सी है ह्वै गई ।

४- जंगनामा०,रासा०, सियारुल० पृ० २७०, सा०जा०इ० ८ पृ० ३४२

५- जंगनामा०, रासा० सियारुल १ पृ० २७०

६- सा०जा०इ० ८ पृ० ३४२
सियारुल०

७- १ पृ० २७०, रासा०, जंगनामा

विश्वासपात्र एवं बाल मित्र सेनापति अब्दुल तुराब खां, जो बहुत कुछ नवाब के रूप रंग से मिलता जुलता था, एवं उसी के जैसे हरे रंग के वस्त्र भी पहने हुए था, भगवंतराय का सामना करने के लिए उपस्थित हुआ। भगवंतराय ने अपने घोड़े को उसके हाथी के मस्तक पर चढ़ा दिया तथा अपने बर्छे से तुराब खां को बेध दिया। तुराब खां को नवाब समझने के कारण भगवंतराय ने अपनी तलवार के दूसरे प्रहार से उसके मस्तक को भी विदीर्ण कर दिया एवं उसी बर्छे से उसके मृत शरीर को हाथी के हौदे पर लटका दिया।[१] इस साहसी कृत्य से सारी सेना आतंकित और भयभीत हो गई। साथ के अन्य सैनिकों ने भी ऐसा ही अद्भुत पराक्रम प्रदर्शित किया। नवाब की सेना के पैर उखड़ गए। आतंक की इस घड़ी में बड़े ही साहस के साथ सादत खां ने अपनी भागती हुई सेना को पुन: युद्धभूमि में खड़ा किया।[२] सेना के इस प्रत्यावर्तन से युद्धभूमि की विभीषिका का ठिकाना न रहा। धरती रुण्ड-मुण्डों से पट गई। भगवंतराय अपने स्थान पर अंगद के पांव की भांति अडिग थे। वे युद्ध भूमि में अत्यन्त विकराल हो उठे थे। अनेक प्रसिद्ध योद्धाओं को उनके प्रहार रण भूमि में खंड खंड कर रहे थे। भगवंतराय के भतीजे भवानी सिंह का पुरुषार्थ भी अद्भुत था। वह भगवंतराय के आगे उसी प्रकार युद्ध कर रहा था जैसे राम के आगे स्वयं हनुमान रहते थे।[3] युद्धभूमि में भगवंतराय जिसे लक्ष्य करके ललकारते थे उसी को भवानी सिंह चपेट लेता था। इस नर-संहार से सेना में चारों ओर त्राहि त्राहि मच गई। अंत में नवाब ने संधि का प्रस्ताव रखा। फलस्वरूप युद्ध बन्द हो गया। बादशाह की ओर से पत्र लिख कर सादत खां ने भगवंतराय की भूरि भूरि प्रशंसा की तथा १४ परगनों का स्वतंत्र स्वामी मान लिया। व्यर्थ के रक्तपात से बचने के लिए भगवंतराय ने भी संधि स्वीकार कर ली।

१- सियारुल० १ पृ० २७०

२- विरुदावली०

३- विरुदावली०, जंगनामा०

संधि हो जाने से दूर दूर के ठिकानों से आए राजपूत वीर भविष्य में अवसर पड़ने पर अपनी सहायता का आश्वासन देकर अपने-अपने स्थानों को चले गए । किन्तु नवाब के षड्यन्त्र से प्रेरित चौधरी दुर्जन सिंह जगनवंशी, बिसेन, बैस, कनपुरिया, कछवाह तथा चुने हुए वख्तर बन्द चौधरियों के सौ अश्वारोहियों के साथ एक दिन प्रात:काल केशरिया बाना पहने हुए गाजीपुर के किले के पहरेदारों को धोखे में डालकर किले के भीतर घुस गया । भगवंतराय इस समय पूजा कर रहे थे । पूजा भवन से हाथ में तलवार लिए हुए वे बाहर निकले दुर्जन सिंह ने अपने प्रहार से उनके वक्षस्थल को चीर दिया । भवानी सिंह भी वहीं स्वर्गवासी हो गया । अनेक शूरवीर आ-आकर वहीं कटते और गिरते रहे किन्तु अंतिम विजय दुर्जन सिंह की ही हुई ।[1] चौधरी ने अपनी विजय और वीरता के प्रमाणस्वरूप भगवंतराय तथा भवानी सिंह के शरीर तथा मस्तक नवाब के सामने प्रस्तुत कियए । नवाब ने इन दोनों की खाल खिंचवा कर भूसा भरवा दिया तथा शिर और खाल को वजीर कमरुद्दीन खां को भेंट करने के लिए दिल्ली कूच किया ।[2]

भगवंतराय का व्यक्तित्व

<u>आकृति और वेश विन्यास</u> : चित्र - पोस्टकार्ड साइज में भगवंतराय का एक चित्र १९१७-१८ में असोथर के पुराने कागजों की छानबीन करते हुए मिला था । चित्र अत्यन्त जीर्ण अवस्था में था अत: इलाहाबाद भेज कर एक प्रसिद्ध चित्रकार श्री पी०एन० वर्मा से उसकी प्रतिलिपि करा ली गई थी । मूल चित्र के महत्व को न समझ सकने के कारण स्थानीय लोग उसे सुरक्षित न रख सके । अब प्रतिलिपि किये गए चित्र से ही उनकी आकृति और वेश-विन्यास को जाना जा सकता है ।

१- संधि प्रस्ताव और तत्पश्चात दुर्जन सिंह के हाथों भगवंतराय का धोखे से मारा जाना, विवादास्पद है । 'इतिहास-निरूपण' के [illegible] अध्याय में हमने अपने निष्कर्षों को प्रस्तुतकिया है ।

२- सियारुल०१ पृ० २७०, ता०हि०इ० ८ पृ० ५२, स०जा०इ० ८, पृ० ३४२

सादत खां से युद्ध करने के प्रस्थान के पूर्व वे वीर वेष में सज्जित हैं। शरीर में कवच तथा सिर में लोहे का टोप धारण किए हुए वीरासन में बैठे हैं। उन्नत ललाट, आयत नयन, आर्यों की-सी दृढ़ और सुडौल नासिका और मुगल फैशन के अनुरूप खशखशी दाढ़ी है जिससे मुख मंडल अत्यन्त गरिमा मय दिखता है। युद्ध भूमि को प्रस्थान करने की घड़ी में भी मुख-मंडल पर न उत्तेजना है, न उद्विग्नता वरन् एक दैवी शांति तथा आत्म-विश्वास की दृढ़ता प्रकाशमान हो रही है। बैठी हुई स्थिति में भी उनके शरीर की ऊंचाई बाहों की विशालता, स्कन्धों की पृथुलता, छाती की चौड़ाई तथा सुदृढ़ शरीर-यष्टि उनकी बलिष्ठता का बोध कराती हैं। बायें हाथ से भवानी सिंह को वे पान का बीड़ा दे रहे हैं। दृष्टि भवानी सिंह पर केंद्रित और अन्तर्भेदिनी है। भवानी सिंह भी अपने वीर बाने में शिर से पावों तक लोहे से ढका हुआ है। वह खड़ा होकर नम्रता पूर्वक अपना मस्तक झुका कर पान के बीड़े को दोनों हाथों से ग्रहण कर रहा है। उसके अंग भी गठीले एवं अत्यन्त बलिष्ट प्रतीत होते हैं। ऊंचाई भगवंतसिंह से कम है। मुखमंडल में गोलाई अधिक है एवं दाढ़ी भी नहीं है। मुद्रा से आत्म-विश्वास और उत्साह प्रकट होता है। दृढ़ता, वीरता और शक्ति उसके भरे हुए चेहरे से विकीर्ण हो रही है।

चित्र के अतिरिक्त भगवंतराय के शरीर पर धारण करने के दो कवच भी असोथर में हैं। एक कवच में स्कंध और बांह हैं दूसरे में पीठ का भाग तथा नीचे की लंबान अवशेष हैं। इनके द्वारा भी उनके शरीर और उनकी शक्ति का अनुमान सहज में ही लगाया जा सकता है। उनकी ऊंचाई इनके आधार से ६ फुट से भी अधिक प्रतीत होती है। अत्यन्त जीर्ण और टूटी हुई दशा में होने से ठीक-ठीक नाप नहीं की जा सकती। इस प्रकार निश्चित होता है कि शारीरिक शक्ति में अवश्य ही वे अपने समय के अद्वितीय योद्धा रहे होंगे। भूधर कवि का 'सजीलोडील' उनके इसी आकार का आभास देता है। उनके विरोधी इतिहासकारों ने भी उन्हें सिंह सरदार कहा है।[१] बड़े बड़े सरदार उनका

१- ता० हि० इ० भाग ८ पृ० ५२

सामना करने से उसी प्रकार घबराते थे जैसे उन्हें किसी सिंह के सामने जाना है ।[१] हजारों योद्धाओं के बीच में भी उनकी बराबरी करने वाला कोई नहीं था । रुस्तम जैसे वीर का हृदय भी उनके सामने जाने में दहल उठता ।[२]

शौर्य एवं शक्ति : भगवंतराय अपने युग के अद्वितीय योद्धा एवं अप्रतिम सेनानायक थे । कुल २२ प्रसिद्ध युद्धों का अत्यन्त कुशलता पूर्वक संचालन करने का उन्हें अनुभव था ।[३] उस युग की वीरता ने जैसे उन्हें वरण कर लिया था । वे राजा-रावों के श्रृंगार थे ।[४] तत्कालीन इतिहास का कोई भी ` साहू ` ` हाड़ा ` या ` जैसिंह ` उनके सामन्त की बराबरी में मंद जान पड़ता था ।[५] इसी लिए कवियों को इनके द्वारा हिन्दू-पद की सम्मानजनक स्थापना की आशा बंधी ।[६]

मुगलों की सैना के सबसे प्रसिद्ध सेनापति सादत खां की की भी सैनिक योग्यता उनके सामने नगण्य थी । भगवंतराय स्वयं उसे अपनी प्रतिद्वंद्विता के योग्य नहीं समझते थे।
यह है सहादत कौन जो भगवंत के आगे लरै - विरुदावली० में सादतखां की वीरता को भगवंतराय की प्रतिद्वंद्विता में कवि ने तिरस्कृत कर दिया है ।

१- जंगनामा० रासा०

२-जंगनामा०

३-विरुदावली की हस्तलिखित प्रति में लिखा मिला है ` बाइस समर भये गोपाल ` पर ना०प्र०पत्रिका भाग ६ अंक ३ पृ० २५५ में ४८ युद्धों का विजेता लिखा है ।

४-उठिगो सिंगार सबै राजा राव राने को ` - भूधर

५-काहू साहू हाड़ा नाहीं ऐसी शक्ति कछवाहे में
जैसी सवाई कौन धौंसल चिकारो है
मारो है सहादत खां, जानि कै तुराव खां को
भूपत भवानी सिंह आज लौंन हारो है - अज्ञात

६-` तोहीं पै रही है आज लाज हिन्दु पद की ` - कंठ

इसी प्रकार की उक्ति जंगनामा० में भगवंतराय के मुख से कहलाई गई है ` कौन सा है सहादत खां, मेरा जी बेकरारा है `

स्वयं बहुत बड़े योद्धा होने के अतिरिक्त उनकी विशेषता थी एक सफल सेनानायक होने की । उन्हें वीरों की परख थी । जिस प्रकार उन्हें सत्कवियों तथा संगीतज्ञों से अनुराग था उसी प्रकार सच्चे वीर भी उनके हृदय के हार थे । भूघर ने तो यहां तक कह दिया है कि ` सच्चे वीरों की रोजी ही भगवंतराय के साथ संसार से उठ गई ।`[१] मुहम्मद कवि भी उनकी सैना के ऐसे ही चुने हुए वीरों का चित्र प्रस्तुत कर देता है :

केशरिया सब का बाना है, लगे तरकस कमाना है
अजब गबरू ज्वाना है कि प्यादा क्या असवारा है

` ऐसे ही वीर के मुख से उस युग के सबसे बड़े सेनापति सादत के लिए यह ललकार निकल सकती है :

जमन कुल को नास करि हों, खग्ग गहि खप्परैं भरि हों
मारि रन फौजें चलाऊं , जरैं दिल्ली को हलाऊं
नाम तब भगवंत मेरा, रहन देउं न आजु डेरा
बचन को नहिं टेक टारों चढ़ि सहादत खांन मारों - विरुदावली०

जिस समय एक छोटी सी सैनिक टुकड़ी का नेतृत्व स्वयं करते हुए उन्होंने सादत खां के ऊपर धावा बोला था उस समय उनकी दृढ़ता और निष्ठा को निम्न पंक्तियों में चित्रित कर दिया गया है :

जहां पर हो सहादत खां करो मिल एक बारा है
कहा मुखबिर खबर टेरे जो हलका हाथियों केरे
अमीर-उमरा सभी घेरे नहीं कुछ अख्तियारा है
कहा अब देर मत लागे सभी ढीली करो बागे
जो चाहो लैव फिर, भागे तो हरगिज ना गुजारा है
उठा बागे चले ज्वाना अगू भगवंत मरदाना
जहां पर था सहादत खां तहां सीधे सिधारा है - जंगनामा

१- उठिगयो आलमसों रुजुक सिपाहिन को ` - भूघर

भगवंतराय के अंगरक्षकों में अपने नायक के प्रति कितनी श्रद्धा थी एवं अपने प्राणों से उसके इशारे पर वे किस प्रकार खेलते थे, इसका भी दृश्य इन पंक्तियों में है :

भिरत एकै वीर कुश्ती, करैं जे भगवंत पुश्ती
परे भट अक्कटे फर में, तऊ गहत कृपान कर में

o o o o o o

बर्छी चलतरवारि जहं, तहं ओट देत न ढाल की
नृप सभासिंह कुमार तहं रच्छा करत महिपाल की

विरुदावली०

भगवंतराय के ये समस्त गुण असाधारण थे । उनकी वीरता और उनका सेनापतित्व चकित कर देने वाला था ।

भ्रमण : आरंभ से ही राजनीतिक तनावों एवं अनेक प्रकार की व्यस्तताओं के कारण उन्हें पर्यटन और भ्रमण के अवसर सामान्यतया कम मिले होंगे । मुगलों के साथ एक ही अवसर पर उनकी मैत्री या समझौता हो सका था ।[1] इसलिए उनकी सेनाओं में सम्मिलित होकर बाहर जाने की संभावना भी नहीं रहती । फिर भी उन्होंने भ्रमण के द्वारा अपने अनुभवों और ज्ञान को परिपुष्ट किया था ऐसा प्रतीत होता है । दो कारणों से वे बाहर निकले होंगे (१) तीर्थाटन करने एवं (२) अपने कुसमय के दिनों में । तीर्थाटन में उनकी श्रद्धा थी इसका प्रमाण यह है कि वे प्रयाग में हाथी वाले पंडे की बही में अपना पता ठिकाना पूछने पर स्वयं ही उसकी बही में एक कवित्त लिख आए थे । आपद्काल में वे असोथर से बाहर-बाहर रहे इसके लिए चार संकेत विद्यमान हैं । (१) सादत खां का चौधरी दुर्जन सिंह से यह पूछना कि वह अपने ठिकाने में ही है अथवा जंगलों में निकल गया ।[2] (२) भगवंतराय की धर्म पत्नी का युद्ध न कर बुंदेलखंड में कालक्षेप करके नवाब के आक्रमण को टाल देने का प्रस्ताव[3] (३) प्रत्यक्ष

१- तुलना कीजिये श्रीधर लिखित 'फर्रुखसियर का जंगनामा' के खजुहा के युद्ध-प्रकरण से
२- रासा०
३- रासा०

रूप से कमरुद्दीन के आक्रमण के समय चित्रकूट के पर्वतों में जाकर रहना[१] (४) मालवा (गुगेर) में उनका एक ब्राह्मण को दान का पट्टा लिखना ।[२] इस प्रकार कहा जा सकता है कि धार्मिक एवं राजनैतिक कारणों से उन्होंने भ्रमण भी किए थे , जिससे उनका ज्ञान व्यापक एवं अनुभवपरिपुष्ट हुआ ।

<u>उपासना और इष्ट</u> : भगवंतराय भागवान राम के अनन्य उपासक थे । अपने उपास्य का गुणगान करने के लिए ही उन्होंने रामायण की रचना की थी । राम-भक्ति के ही अंग रूप से वे हनुमान के भी भक्त थे । कृष्ण और विष्णु की भी स्तुतियां उन्होंने उसी भाव से लिखी हैं । इससे प्रकट होता है कि उनका उपासना संबंधी दृष्टिकोण उदार था । यहीं नहीं अन्य देवी देवताओं की आराधना भी निष्ठा पूर्वक उन्होंने की है । उपासना का लक्ष्य है उपास्य के कल्पित रूप से उपासक तद्वतता प्राप्त करें, अपने को उपास्य में ही ढाल दे । उपासना संबंधी उनका यही दृष्टिकोण था । सूर्य विद्या-गुरु कहे जाते हैं । इसलिए उनसे वे राज्य, विद्या शक्ति और यश की कामना करते हैं ।[३] भैरव युद्ध के देवता हैं, उनकी सिद्धि युद्ध-भूमि के नायक के लिए कितनी महत्वपूर्ण होगी ।[४] देवी शक्ति और सुरक्षा की अधिष्ठात्री हैं । कहा यह जाता है कि देवी की उन पर अनन्य कृपा थी । उन्हें देवी की सिद्धि थी । युद्धभूमि में जाने के पूर्व वे देवी का ध्यान करते थे और जब तलवार की मूठ उनके हाथ में आ जाती थी तो वे युद्ध के लिए प्रस्थान कर देते थे । युद्ध के लिए स्वयं देवी ही उन्हें तलवार हाथ में देती थी ।[५] केशरी कुमार से उनकी वीर भावनाओं का पूर्ण तादात्म्य

१- रासा ०

२- राघोगढ़ घराने के कानूनी सलाहकार श्री रविशंकर देसश्री की साक्षी के आधार पर ।

३- "सरन है राम भगवंत बलवंत तूं
    राज विद्या महाशक्ति सौरभ भरन "

४- भैरव को लक्ष्य करके लिखा गया उनका एक तांत्रिक ध्रुपद भरत जी व्यास के पास है ।

५- इस प्रकार की अनुश्रुति कई जगह के कई लोगों से सुनने को मिली है । कानपुर के कवि श्री हृदय नारायण पाण्डेय"हृदयेश"का नाम उल्लेखनीय है ।

स्थापित होता था ।[१] इन देवी देवताओं की उपासना से इहलोक और परलोक दोनों को सफल बनाने के वे इच्छुक थे ।

एक ही परमेश्वर के विभिन्न गुणों का प्रतिनिधित्व भिन्न देवी देवता करते हैं, इस प्रकार विभिन्न स्वरूपों की उपासना में एक ही ईश्वर को देखना उनकी उपासना का रहस्य था । वे इतर तंत्र साधनाओं या सिद्धियों को महत्व नहीं देते थे ।[२]

भगवंतराय की उपासना पद्धति रामानन्दी सम्प्रदाय के अनुरूप है । इनकी भक्ति का आदर्श तुलसी का अनुसरण करता है । तुलसी अपने ` राम ` से भक्ति को छोड़कर किसी दूसरी वस्तु की याचना नहीं करते , याचना क्या याचना का विचार भी नहीं लाते । अन्य देवी देवताओं की प्रार्थना वे इसलिए करते हैं कि वे सब उन्हें राम के निकट पहुंचाने में सहायक हों, बस । गाढ़ा से गाढ़ा समय पड़ने पर वे राम के वीर दूत हनुमान का पल्ला पकड़ते हैं । इसी प्रकार भगवंत राय भी अन्य देवी देवताओं की स्तुति अपनी लौकिक सफलताओं के लिए करते हैं और राम का भजन वे भक्ति, मोक्ष या परम-पद के लिए ही करते प्रतीत होते हैं ।

<u>प्रकृति और स्वभाव</u> : भगवंतराय अत्यन्त सरल प्रकृति के थे । एक स्थानीय अनुश्रुति के द्वारा उनके चरित्र के इस पक्ष पर अच्छा प्रकाश पड़ता है । उनके एक सामंत व्यालू में एक दिन साथ नहीं गए । रसोइया थाल लेकर देने गया । सामंत ने कहला भेजा कि यदि भगवंतराय स्वयं थाल लेकर आयंगे तभी वह भोजन ग्रहण करेगा । इधर भगवंतराय चौके में बैठकर सामंत के भोजन ग्रहण करने के समाचार की प्रतीक्षा कर रहे थे । रसोइये द्वारा सामंत का संदेश पाते ही स्वयं खड़ाऊं पहन भोजन का थाल लेकर उसके पास पहुंचे । सामंत तो अपने नायक का प्रेम परखना चाहता था वह कृतकृत्य होकर उनके चरणों में गिर पड़ा ।[3] अपने अधीनस्थ जनों के साथ उनका व्यवहार आत्मीयतापूर्ण

१- ` कैसी भई तोहिं तो हठीले हनुमान वीर, पन को पलैयातें जनैया जनमन को `

२- फूस को तापनो, भूत को जापनो, फांफरी खेवा ` उक्ति इसका प्रमाण देती हैं ।

३- असोथर के श्री अर्जुन सिंह जठेर के अनुसार

था । सायंकाल का भोजन नियमित रूप से वे अपने सामन्तों स्वजनों एवं कुटुम्बियों के साथ बैठकर करते थे । पारुस में भी किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं रखा जाता था ।[1] उनकी विनय-शीलता, उदारता, आत्मीयता और अहंकार शून्यता का कैसा उदाहरण मिलता है । कुटुम्ब के लोगों के प्रति उनके हृदय में विशेष प्रेम था । उन्होंने अपनी पैतृक सम्पत्ति अपने दूसरे भाई सभासिंह के लिए छोड़ दी थी एवं स्वयं अपने बाहु-बल से जीते हुए प्रदेश पर गाजीपुर में रहकर शासन करते थे ।

विद्वानों, ब्राह्मणों एवं कवियों का भी उनके यहां बहुत अधिक सम्मान होता था । अवध प्रदेश के अनेक कुलीन ब्राह्मणों के परिवारों में परम्परा से भगवंतराय के आश्रय काल की स्मृतियां सुरक्षित हैं । असोथर के एक परिवार में उनके हाथ की दी हुई एक सेर से भी अधिक भार की स्फटिक मणि की शंकर जी की मूर्ति है । सुप्रसिद्ध कवि हृदय नारायण 'हृदयेश' ने बताया है कि उनके पूर्वज उन्हीं के आश्रय में रहते थे । अपने पिता से भगवंतराय के संबंध की अनेक घटनाएं बचपन में उन्हें सुनने को मिली थीं । उनके नाम का स्मरण आदर और गर्व के साथ अब भी लिया जाता है । इस गुण-ग्राहता के कारण भगवंतराय के समय में असोथर विद्या और संस्कृति का केंद्र बन गया था । शंभुनाथ मिश्र और भूधर इत्यादि कवियों की रचनाओं में उनकी इसी उदाराशयता का कथन है ।[2]

शक्ति सदाचार और न्याय उनकी प्रकृति के सहज अंग थे । वे अत्याचार होते नहीं देख सकते थे ।[3] शासन में धार्मिक आदर्शों को वे बहुत अधिक महत्व देते थे । प्रजा पर शासन करने वाले व्यक्तियों की नियुक्ति वे अत्यन्त विचारपूर्वक उनके गुणों के आधार पर किया करते थे ।[4] इससे विदित होता है कि शासक रूप में प्रजा के साथ उनका व्यवहार न्यायपूर्ण था ।

१- उनकी चलाई असोथर की यह परम्परा बहुत दिन बाद तक चलती रही है । इसकी साक्षी असोथर के वृद्धों से मिलती है ।

२- मंडल की चर्चा करते समय हम इन कवियों की कुछ रचनाओं को प्रमाण-स्वरूप उद्धृत कर चुके हैं ।

३- विरुदावली०

४- रासा०

उनके व्यक्तित्व की वीर प्रकृति उनकी सबसे बड़ी विशेषता थी । रीतिकाल के श्रृंगार-डूबे युग में रहकर भी अपने को उससे सर्वथा असंपृक्त रखा । यह सचमुच एक असाधारण बात थी । एक ही पत्नीव्रत को उन्होंने बड़ी मर्यादा से निभाया था ।

पत्नी उनके लिए भोग्या मात्र नहीं वरन् जीवन-सहचरी थी । वे गंभीरतम समस्याओं में भी उनसे मंत्रणा लिया करते थे ।[१] इसके अतिरिक्त उनकी रचनाओं से भी साक्षी मिलती है कि उन्हें जीवन की उदात्त साधना में सबसे अधिक रस मिलता था । संगीत एवं रागात्मकता का भी उनके भीतर अविकल प्रवाह था । वीरता और कोमलता का ऐसा अद्भुत सामंजस्य उन्हें इतिहास प्रसिद्ध महापुरुषों की कोटि में स्थापित करता है ।

<u>प्रतिभा और विद्वत्ता</u> : भगवंतराय जैसी बहुमुखी प्रतिभा के व्यक्तित्व मध्य युग के इतिहास में विरल हैं । अपने युग की समस्त राजनैतिक हलचलों का कुछ समय के लिए उन्होंने अपने को एक मात्र केंद्र सिद्ध कर दिया था । देश की समस्त शक्तियां उनके विद्रोही नेतृत्व के परिणाम की ओर उत्सुकता से निहार रही थीं ।[२] इस शक्ति के अधिष्ठाता होने के लिए एक उच्च कोटि के सैनिक की ही नहीं वरन् एक नायक की प्रतिभा अपेक्षित होती है । उन्होंने साधारण ग्रामीणों को संगठित और अनुशासित किया, उन्हें उनकी शक्ति का बोध कराया एवं तत्पश्चात राष्ट्र और जाति के महान यज्ञ में आहुति के लिए उनका सहयोग लिया । यह संगठन-कार्य आसान नहीं था । अपने लक्ष्य की सिद्धि के लिए उन्होंने पेशवा तथा राजस्थान की शक्तियों से भी सम्पर्क स्थापित करने की योजना प्रारम्भ कर दी थी । यदि उनके जीवन के साथ यह योजना असमय में ही न खंडित हो गयी होती तो निश्चय ही हमारे इतिहास में आमूल परिवर्तन की संभावना थी ।

१- रासो

२- स्वयं दिल्ली का बादशाह आतंकित था तथा पेशवा भी इनके कार्यों को जिज्ञासा भरी दृष्टि से देख रहा था । मराठा एजेंट के पत्रों से इसकी ध्वनि होती है ।

युद्ध की कला का छत्रपति शिवाजी ने दक्षिण महाराष्ट्र में जो नया स्वरूप दिया था, उसकी जो इतिहास में उपलब्धि हुई, उसी प्रकार इन्होंने भी सैन्य संचालन में अपनी सूझबूझ और योग्यता का परिचय दिया था। अंतर्वेद की समतल भूमि में भौगोलिक परिस्थितियों के अनुकूल न होने पर भी इन्होंने अपने अभियानों में छोटी-छोटी सेनाओं को लेकर अद्भुत सफलता प्राप्त की थी। उनके द्वारा प्रयुक्त हुए आत्म रक्षणात्मक एवं आक्रमणात्मक व्यूह नि:संदेह अद्वितीय सिद्ध होते हैं। बड़ी से बड़ी मुगल सेना को चक्कर में डालकर उसके बीच से निकल जाना एवं समय पड़ने पर थोड़े से सैनिकों के साथ डट कर अपने को अपराजेय सिद्ध कर देना यह बड़े ही कुशल, अनुभव-सिद्ध एव आत्म-विश्वासी सेनानायक की विशेषता हो सकती है। इनके सैनिक इनके संकेतों पर जूझने के लिए सदैव प्रस्तुत रहते थे एवं अपने को किसी भी संकट में डाल सकते थे।[१]

भगवंतराय में न केवल सैनिक नेतृत्व की प्रतिभा थी वरन् वे प्रगतिशील विचारों के सामाजिक नेता भी थे। इसका अनुमान इसी से किया जा सकता है कि धार्मिक तनाव के उस युग में जब मुसलमान के हाथ का पानी मात्र पी लेने से ही हिन्दुत्व प्रणाम कर लेता था, उन्होंने मुसलमान कन्याओं की हिन्दुओं से शादी की व्यापक मान्यता करा ली।[२] इन घटनाओं से सिद्ध होता है कि वे जनता के हृदय के शासक एवं उसके विचारों के अधिनायक भी थे। यह प्रतिभा मध्ययुग के कई शताब्दियों के इतिहास में देखने को नहीं मिलती। इन्हीं व्यक्तिगत विशेषताओं के कारण उन्हें 'अवतारी' पुरुष कहा जाता था।[३] उनकी सेना में रहने वालों के प्रति जनता के हृदय में अपार श्रद्धा थी। गाजीपुर

१- जंगनामा० और रासा० में उनकी व्यूह रचना और आक्रमण इत्यादि की झलक मिल जाती है। सियारुल० और मीरातुल० के वर्णनों से भी उनके युद्ध कौशल की व्यंजना होती है।

२-जानिसार खां की लड़की अनीस की शादी उन्होंने अपने लड़के रूपराय के साथ की थी। उनकी कई पुश्ते असोथर में चली हैं और वे सब राजपूतों के साथ रहे। इस वंश के अंतिम व्यक्ति का नाम कन्हैया बख्श सिंह था। तुलना कीजिये मीरातुल० पृ० १७१ अ तथा सियारुल १ पृ० २६६

३-चमुण्डा जाब्यां करती उतर औतार धारा है' जंगनामा०
इसके अतिरिक्त इस संबंध में एक अनुश्रुतियां भी प्रचलित हैं। कहते हैं असोथर के तीर्थ यात्री बद्रीनाथ गये थे। वहां उन्हें कुछ दिव्य साधु मिले। सबकी धूनियां जल रहीं थीं। एक धूनी के पास कोई साधु न था। एक साधु ने यात्रियों से पूछा क्या तुम असोथर से आ रहे हो। यात्रियों ने साश्चर्य स्वीकार किया। फिर उसी साधु ने कहा : वहां भगवंतराय राज्य करता है। उससे कहना कि उसकी धूनी बुझ रही है आकर अब उसे प्रज्वलित करें। कहते हैं उसी वर्ष भगवंतराय को वीरगति मिली।'

गाजीपुर के अंतिम युद्ध में जूझने वाले वीरों के ' मुड़ चौरा ' पर अब तक लोग दूर दूर से चलकर अपनी मनौतियां करने आते हैं ।[१] आज भी भगवंतराय का नाम उनके मंडल के अंतर्गत बड़ी श्रद्धा से स्मरण किया जाता है ।

जीवनभर युद्धस्थलों और राजनैतिक चक्रों से जूझते रहकर भी उनकी प्रतिभा ने साहित्य और संगीत के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण सेवायें की हैं । उन्हीं के समय में कवि रूप में भी उनकीख्याति दूर-दूर तक फैल गई थी । उनकी कवि प्रतिभा का सादर उल्लेख हुआ है । ' अलंकार रत्नाकर ' के रचयिता दलपतराम और वंशीधर ने उदयपुर में बैठे बैठे उनकी रचनाओं का परिचय प्राप्त किया था । अपने समय तक के हिन्दी के ३५ श्रेष्ठ कवियों की तालिका में स्थान देकर इनके महत्त्व को उन्होंने सिद्ध किया है ।[२] बाद के रीतिकाल के संग्रह ग्रन्थों में भी इनकी रचनाओं को स्थान मिला है जैसे ' दिग्विजय भूषण ' में । वे संस्कृत के साहित्यग्रंथों एवं तंत्र-साहित्य से भी परिचित रहे होंगे । फारसी जानने के भी संकेत मिलते हैं । हिन्दी की तो साधिकार सेवा की ही है । वे एक साधारण पाठक अथवा वाचक मात्र नहीं थे वरन् जो कुछ पढ़ते थे उस पर मनन और विचार करते थे । एवं स्वतंत्र निष्कर्षों की स्थापना करते थे । मुसलमानों की शुद्धि की उन्होंने जिस भूमिका पर मान्यता कराई होगी उसमें शास्त्रीय आधार अवश्य रहा होगा । यह क्रान्ति-दर्शिता विद्या और विवेक से सम्पन्न व्यक्तित्व से ही उद्भूत होकर लोक-मान्यता प्राप्त कर सकती थी ।

<u>गुण-ग्राहकता</u> : मनुष्य की प्रतिभा को परख कर उसके विकास को दिशा देना भी उनकी विशेषता थी । उनके यहां आने जाने वाले हिन्दी के सैकड़ों कवि रहे हों तो भी कोई आश्चर्य नहीं ।[३] जिन कवियों का पता चल सका है उनका

१- इटावा तक से आकर वहां पर लोग अपने लड़कों की झालर उतरवाते हैं । कहते हैं बच्चों का सूखा रोग अच्छा हो जाता है ।

२- आपेलोफण० पृ० ३

३- मिश्र० भाग-२, पृ० ६८२

परिचय आगे के एक अध्याय में प्रस्तुत है । विद्वान ब्राह्मणों का भी उनके यहां बहुत अधिक सम्मान था । कवि ` हृदयेश ` जी की साक्षी पिछले पृष्ठों में उद्धृत की जा चुकी है । ब्राह्मणों के अतिरिक्त इतर वर्ण के लोगों का भी उनके यहां सम्मान होता था ।[१] संगीतज्ञों का भी वे सम्मान करते थे एवं ११ संगीतज्ञों की मंडली उनके आश्रय में रहती थी । देव तथा सुखदेव मिश्र के नाम संगीत के क्षेत्र में भी प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं । सैनिकों की भी उन्हें अद्भुत परख थी इसका भी उल्लेख हो चुका है । इस प्रकार कहा जा सकता है कि उनकी गुण-ग्राहकता ने उनके युग की सैन्यकला, साहित्य, संगीत और संस्कृति के विकास में उल्लेखनीय सहयोग प्रदान किया ।

जनता की आर्थिक समृद्धि का प्रश्न भी इनकी दृष्टि से ओझल नहीं था, कृषि की उन्नति के लिए इन्होंने अनेक कुएं और तालाब खुदवाये थे । कई अब भी उनके नाम के साथ लोगों को याद हैं । प्रजा की समृद्धि के साथ साथ इनका कोष भी काफी समृद्ध हुआ ।

दरबार : भगवंतराय का दरबार और उसका ठाठ बाट उच्चकोटि का था । उन्हें राजाधिराज[३] कहा जाता था । वे छत्रधारण करते थे ।[४] उनके दरबारी

१- लोध, अहीर, पासी एवं बहेलिया उनके बहुत बड़े सहायक थे । इन जातियों की मैत्री की अनेक अनुश्रुतियां असोथर के आसपास के लोगों से सुनने को मिली हैं ।

२- उनकी संगीत रचनाओं का विवेचन करते समय अगले अध्याय में इसका प्रमाण दिया गया है ।

३- उनके षटरागों के कोष्टक में उनके नाम के पहले ` श्रीमंतवलवंत महाराजाधिप ` विशेषण लगा है तथा विरुदावली० में ` भगवंत रैया रायनृप ` एवं रासा० में ` राजाधिराज भगवंतजू ` कहा गया है ।

४- `छत्र धरि छितिपाल आये, विरद बंदी जनन गाये ` - विरुदावली

परन्तु जो चित्र उनका प्राप्त है उसमें सिंहासन नहीं है । साधारण चांदनी पर बैठे ही वे पान का बीड़ा देते दिखाये गये हैं । कहा नहीं जा सकता कि यह ~~चित्र~~ चित्रकार की भूल है या किसी अन्य कारण से है ।

मंत्रियों, सामन्तों और कुटम्बियों की परिषदें थी[१] । ये परिषदें राजा का बहुध अधिक सम्मान करती थीं । उनकी मंत्रणा स्वतंत्र और निर्भीक होती थी ।[२] राजा भगवंतराय इनकी मंत्रणा पर विचार करके ही अंतिम निर्णय करते थे ।[३]

दरबार की श्री इतनी ही नहीं थी । सुप्रसिद्ध कवि, पंडित और संगीतज्ञ अपनी उपस्थित से उसके गौरव को अमर कर गए हैं ।

१- रासा०

२- रासा०

३- रासा०